Azim Premji University अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली Ambedkar University Delhi

स्कूली शिक्षा के बदलते परिदृश्य में अध्यापन-कर्म की रूपरेखा

तीन दिवसीय संगोष्ठी : आधार पत्र

पृष्ठभूमि

भारत के स्कूली तंत्र में शिक्षक की भूमिका पर एक बार फिर से चर्चा शुरू हो गई है। यह चर्चा शिक्षक की वांछनीय योग्यता, प्रशिक्षण और बच्चों के सीखने-सिखाने में उसकी भूमिका पर भी हो रही है।

पिछले कुछ दशकों में सरकारी प्राथमिक व अब उच्च-प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में भी अन्य वर्ग के बच्चों के साथ-साथ वंचित वर्ग के बच्चों का आना क्रमशः शुरू हुआ है, लेकिन हमारा स्कूली तंत्र अब भी अध्ययन-अध्यापन के वांछित स्तर को प्राप्त नहीं कर सका है। माध्यमिक स्तर पर बच्चों की पहुँच भी अभी कम ही है। इस स्थिति को बेहतर बनाने की दिशा में कई तरह के प्रयास हो रहे हैं, जैसे पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक को क्रमशः बेहतर बनाना, स्कूल में भवन, शौचालय की व्यवस्था करना आदि। लेकिन सबसे बड़ी चुनौती यह है कि स्कूलों में पर्याप्त संख्या में कुशल शिक्षक शिक्षण के लिए उपलब्ध हों। आम तौर पर यह स्वीकार किया जाता रहा है कि शिक्षा की गुणवत्ता सबसे अधिक और सीधे-सीधे शिक्षक की गुणवत्ता पर निर्भर होती है।

भारत में आज शिक्षक होने का अर्थ

वैसे तो शिक्षक हमेशा से ही शिक्षा के केन्द्र में माने गए हैं। किन्तु भारत में शिक्षक की हैसियत, उसकी भूमिका, तैयारी, वेतन-भत्ते आदि को लेकर कई बातें कही जाती रही हैं। इनमें बहुत-सी तो एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत होने पर भी एक साथ ही कही जाती हैं।

हाल के दशकों में जहाँ एक ओर शिक्षक की लगातार गिरती सामाजिक हैसियत, उसकी तैयारी व उसके साथ हो रहे प्रशासनिक व्यवहार पर चिन्ता जाहिर की जा रही है, उस पर और ध्यान देने व इस दिशा में यथोचित खर्च करने की बात हो रही है, वहीं दूसरी ओर शिक्षक समुदाय के प्रति गहरा रोष व आक्रोश बढ़ता जा रहा है। जगह-जगह उन पर नकेल कसने और ज्यादा निगरानी से आगे जाकर शिक्षक की काबलियत से निरपेक्ष (टीचर प्रूफ) शैक्षिक व अन्य सामग्री विकसित करने की बात हो रही है। शिक्षक के प्रति जो रुख है वह उन्हें नकारा मानने और कर्णधार के रूप में उनके आलंकारिक गुणगान के बीच झूलता रहता है।

कुछ विचारणीय मुद्दे

अधिकांश लोग यह स्वीकारते हैं कि पढ़ाई-लिखाई को पटरी पर लाने के लिए यह जरूरी है कि स्कूलों में उचित संख्या में योग्य शिक्षकों की नियुक्ति हो, व्यवस्थित ढंग से उनकी क्षमता वर्धन की व्यवस्था हो और उनके लिए ऐसी परिस्थितियाँ बनाई जाएँ कि वे अपना काम उत्साहपूर्वक कर सकें। दुर्भाग्य से व्यवहार में उठाए गए कदम व बहुत से व्यवहारिक नीतिगत सुझाव इससे मेल नहीं खाते हैं।

यह बात बार-बार कही जाती है कि भारत में शिक्षक की योग्यता और कार्यकुशलता आवश्यकता के अनुरूप नहीं हैं। नियुक्ति-प्रक्रिया के संदर्भ में भी यह कहा जाता है कि हमें योग्य शिक्षकों को ही चुनना चाहिए। इसी सन्दर्भ में यह सवाल उठता है कि योग्य शिक्षक से हमारा तात्पर्य क्या है? शिक्षक की योग्यता को देखने का हमारा

मापदंड क्या होना चाहिए? एक योग्य और सक्षम शिक्षक बनने की प्रक्रिया क्या होगी?

क्या स्कूल स्तर पर पढ़ाने के लिए उस स्तर पर पढ़ाए जाने वाले विषय को ठीक से जान लेना ही काफी है? इसके पहले कि इस सवाल को उठाने का कोई साहस करे फौरन यह मुद्दा उठ जाता है कि क्या आज बहुत सारे शिक्षकों को प्राथमिक स्तर की विषय-वस्तु की भी पर्याप्त समझ है? कई राज्यों में शिक्षक योग्यता परीक्षा के परिणाम भी चौंकाने वाले हैं।

सवाल यह है कि इन सबसे निपटने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। इनसे निपटने के लिए आज जल्दीबाजी में जो कदम उठाए जा रहे हैं क्या उनसे इस स्थिति से पार पाने में मदद मिलेगी या वे इसे और जटिल बनाएँगे?

शिक्षकों के प्रति सामान्य रवैया

प्रशासकों और सामान्य लोगों का एक वर्ग ऐसा भी है जो मानता है कि शिक्षा के स्तर में जो गिरावट देखी जा रही है उसका ताल्लुक शिक्षक की क्षमता से ज्यादा प्रशासनिक तत्परता से है? उनकी शिकायत रहती है कि शिक्षक स्कूल से अनुपस्थित रहते हैं, देर से पहुँचते हैं और जल्दी चले जाते हैं। उनके अनुसार प्रशासनिक निगरानी का अभाव ही शिक्षा के स्तर के गिरने का कारण है। प्रशासनिक निगरानी ठीक हो जाए तो क्या सब कुछ पटरी पर आ जाएगा ?

जैसे यह भी कहा जाता है कि सक्षम शिक्षक बनने के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता, काम के प्रति निष्ठा और प्रेरणा अधिक महत्वपूर्ण कारक हैं, स्कूल में पढ़ाने के लिए विषय-वस्तु की बारीक समझ इतनी महत्वपूर्ण नहीं है। मान्यता यह है कि दसवीं पास एक आम व्यक्ति अगर पढ़ाने की प्रेरणा और उत्साह से भरपूर हो तो वह विषय-वस्तु और उसे पढ़ाने का समुचित तरीका खुद ही ढूँढ़ लेगा।

ऐसे भी मत हैं जो कहते हैं कि जब तक शिक्षक के मान-सम्मान के प्रति रवैया नहीं बदलता, शिक्षक की आत्मछवि और उसकी जनछवि में आई हीनता की भावना से हम रूबरू नहीं होते और इस भूमिका के बारे में अपने विरोधाभासी मतों को खंगालकर उसमें उपस्थित बड़ी दरार को चुनौती नहीं देते तब तक हम किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं कर सकते।

एक ऐसा पक्ष भी है जो इस बात पर जोर देता है कि शिक्षक की क्षमता व उसका ज्ञान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उसका कहना है कि हमने शिक्षक की तैयारी में उसके ज्ञान व शिक्षकीय समझ पर सबसे कम जोर दिया है। शिक्षक की तैयारी के दोनों तरह के प्रयासों- सेवापूर्व व सेवाकालीन- में जोर तकनीक सिखाने व तय की हुई 'अचूक' कार्य प्रणाली को शिक्षक तक पहुँचाने पर रहा है। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। इसी से समाज में शिक्षक की छवि बदलेगी और शिक्षकों में भी अपने व्यवसाय के प्रति सम्मान पैदा होगा।

शिक्षक की तैयारी

बहुत से लोगों के व्यक्तिगत संस्मरणों में यह बात सामने आती है कि सेवाकालीन प्रशिक्षण में शिक्षक का आग्रह भी अलग-अलग विषय को नवाचारी ढंग से पढ़ाने की विधियों का प्रशिक्षण देने यानी विधियाँ बता देने पर रहता है। उनकी जरूरत जानने के लिए किए गए सर्वे में यह बात प्रायः सामने आती है कि वे अपने ज्ञान में किसी तरह की कोई कमी नहीं पाते। इन सर्वेक्षणों में शिक्षक यही माँग दोहराते हैं कि उन्हें अलग-अलग विषयों जैसे गणित, विज्ञान, अँग्रेजी आदि को पढ़ाने का एक निश्चित और मानक तरीका बता दिया जाए। यह उस धारणा का नतीजा है जिसमें आदर्श शिक्षण (Best Practice) की कल्पना है और उसे ठोक बजाकर सब जगह लागू करने को उचित समाधान माना जाता है। इस मसले पर भी विचार की जरूरत है।

सवाल सेवापूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण के बारे में भी उठ रहे हैं। क्या सेवापूर्व प्रशिक्षण से शिक्षकों को स्कूल की वास्तविक ठोस परिस्थितियों में पढ़ाने में कोई मदद मिलती

है या वे जो कुछ भी सीखते हैं वे स्कूल में काम करते हुए व्यवहारिक स्तर पर सीखते हैं? अगर सेवापूर्व प्रशिक्षण जरूरी है तो उस प्रशिक्षण का स्वरूप और उसका शिक्षाक्रम क्या होना चाहिए?

इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं जो आम जन के मन में उठ रहे हैं। ये प्रश्न जिस तरह से उठाए जा रहे हैं उनमें बेचैनी और व्याकुलता अधिक है और व्यवस्थित ढंग से विचार करके समाधान खोजने का धैर्य कम।

इस सबके बीच शिक्षकों के भी कई सवाल हैं। वे अपने साथ हो रहे प्रशासनिक व्यवहार से तो चिंतित हैं ही, सरकारी स्कूल के शिक्षक इससे भी परेशान हैं कि उन्हें स्कूल में और स्कूल के बाहर भी शिक्षकीय काम के अलावा बहुत कुछ करना पड़ता है। उनका आकलन पढ़ाने के प्रति उनकी तत्परता व गुणवत्ता के आधार पर नहीं वरन गैर शिक्षकीय कार्य और कार्यालयी कामों में उनकी दक्षता के आधार पर होता है। हालाँकि सीखने और न सीखने का पूरा ठीकरा उन्हीं के सिर फोड़ा जाता है, उन्हें यह छूट नहीं होती कि वे सिखाने का कार्य गंभीरता से कर पाएँ।

कुछ शिक्षक दूसरे प्रकार के सवाल भी उठाते हैं। वे कहते हैं कि शिक्षक को न तो किसी भी तरह की परीक्षा लेने की और न ही विद्यार्थियों के साथ किसी प्रकार की सख्ती की इजाजत है। उन्हें बहुत देर तक विद्यार्थियों को किसी वर्ग में रोकने की इजाजत भी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को कैसे सुनिश्चित करें? सरकारी स्कूलों में जिन सामाजिक समूहों के बच्चे आ रहे हैं उनमें पढ़ने-लिखने की कोई पारिवारिक परम्परा नहीं है और वे अपने बच्चों की न तो घर में मदद कर पाते हैं और न ही पढ़ने-लिखने का परिवेश ही मुहैया करवा पाते हैं। ऐसे में हम क्या करें?

संगोष्ठी

स्कूली तंत्र की सतह पर उठने वाले इन प्रश्नों के मूल में कुछ ज्यादा गहरे सैद्धांतिक सवाल हैं। सवाल हमें सिर्फ उद्विग्न नहीं करें, बल्कि विचार के लिए प्रेरित भी करें इसके लिए आवश्यक है कि हम सैद्धांतिक सवालों से जूझें, उनसे कतराएँ नहीं। तीन दिन की इस संगोष्ठी का उद्देश्य इन्हीं सवालों को उठाना और उन पर सामूहिक विचार करना है।

हममें से बहुत से लोग शिक्षकों के साथ अनेक तरह से अनेक मंचों पर काम करते रहे हैं। इन सभी मसलों पर कई अध्ययन भी हुए हैं। इन सभी अनुभवों को व्यवस्थित करने की और एक-दूसरे के साथ साझा करने की जरूरत है। विचार-विमर्श में शिक्षा से सीधे जुड़े अधिक से अधिक लोग शामिल हो सकें इसके लिए आवश्यक है कि जहाँ तक संभव हो इस संवाद को हम भारतीय भाषाओं में चलाएँ, क्योंकि स्कूली शिक्षा से जुड़े अधिकाँश लोग भारतीय भाषाओं में ही काम करते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमने इस संगोष्ठी की भाषा हिन्दी रखी है।

इस संगोष्ठी के विषय को हम तीन प्रकरणों में बाँटकर देख सकते हैं और इन पर क्रमिक ढंग से विचार करते हुए एक समग्र दृष्टि विकसित करने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं:

1. भारत में अध्यापन-कर्म व उसमें बदलाव

एक अध्यापक के काम को ठीक-ठीक किस प्रकार समझें। अध्यापक के काम को उससे मिलते-जुलते अन्य कामों से कैसे अलग किया जाए? उदाहरण के लिए अध्यापक का काम एक प्रवचनकर्ता के काम से कितना और कैसे अलग या समान है? दरअसल एक शिक्षिका कक्षा में क्या करती है? शिक्षण-कर्म की विशिष्टता क्या है? इन

प्रश्नों पर सैद्धांतिक ढंग से नए सिरे से भारतीय समझ व परिस्थिति के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए।

2. अध्यापक बनने की प्रक्रिया

अगर स्कूली शिक्षा सबके लिए आवश्यक है तो हमें अध्यापन कर्म को सही ढंग से संचालित कर सकने वाले पेशेवर लोगों का समूह चाहिए। जाहिर है कि स्कूली शिक्षा-तंत्र में बड़ी संख्या में अध्यापकों की जरूरत है। इस स्तर पर अध्यापक बनने की तैयारी अब छिटपुट और अनौपचारिक ढंग से नहीं हो सकती। शिक्षक-शिक्षा को संस्थागत स्वरूप प्रदान करने का तर्क यही है। प्रश्न है कि शिक्षक-शिक्षा का संस्थागत स्वरूप कैसा हो? शिक्षक-शिक्षा के लिए हमें आज किस प्रकार की पाठ्यचर्या, अध्यापन-विधि और प्रशिक्षकों की जरूरत है? एक महत्वपूर्ण पक्ष अध्यापक का काम करते हुए निरंतर सीखना और उनका क्षमता-वर्धन भी है। ये प्रश्न नए नहीं हैं, लेकिन नए परिप्रेक्ष्य में फिर से उठ रहे हैं।

3. अध्यापक की पहचान

अध्यापन अपेक्षाकृत एक पारम्परिक कर्म रहा है, लेकिन आधुनिक शिक्षा के प्रसार के साथ शिक्षक की भूमिकाएँ बदलीं हैं। एक नया संस्थानिक और प्रशासनिक ढाँचा खड़ा हुआ है जिसमें शिक्षक की पहचान नए सिरे से निर्मित हुई है।

कहना न होगा कि शिक्षक जिस प्रकार अपनी आत्मछवि गढ़ते हैं उससे उनका अध्यापन-कर्म प्रभावित होता है। अपने काम और परिवेश के अर्थ-ग्रहण में आत्मचेतना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

ऐसा लगता है कि हमारे समय में शिक्षक की आत्मछवि और उसकी जनछवि में बड़ी दरार पैदा हो गई है।

इसके साथ-साथ पाठ्यचर्या और ज्ञान के विविध अनुशासनों ने शिक्षक की पहचान को एक नया आयाम दिया है। वे 'गणित शिक्षक', 'अँग्रेजी शिक्षक' आदि के रूप में पहचाने जाने लगे हैं।

बदले हुए परिवेश में शिक्षक की पहचान के विविध तंतुओं को समझने और उन पर नए सिरे से विचार करने की जरूरत है। आधुनिक शिक्षा-तंत्र के विकास के साथ शिक्षक की अध्यापकीय पहचान किन पड़ावों से होकर गुजरी है? भारत जैसे देश में जन्म आधारित अन्य पहचानों के साथ इस नई पेशेवर पहचान का क्या ताल्लुक रहा है? स्कूली शिक्षा-तंत्र में कौन-से वे घटक हैं जो शिक्षक की पेशेवर पहचान को सुदृढ़ करते हैं और कौन-से तत्व ऐसे हैं जिनसे शिक्षक की अस्मिता का क्षरण होता है? इन प्रश्नों पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है।

कार्य योजना : संगोष्ठी दिल्ली में 23 से 25 मई, 2017 तक आयोजित है। संगोष्ठी के लिए ऊपर उल्लिखित तीन विषयों पर लेख आमंत्रित हैं। प्रतिभागी इनमें से किसी एक विषय पर या एक से अधिक पर लिख सकते हैं। किन्तु लेख शामिल किसी एक ही विषय पर किया जाएगा।

प्रतिभागियों से अपेक्षा

लेखों के लिए दो श्रेणियाँ हैं। एक 1200-1500 शब्दों की छोटे लेखों की श्रेणी है और दूसरी 2500-5000 शब्दों वाले लम्बे लेखों की श्रेणी है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है इस संगोष्ठी की भाषा हिन्दी होगी इसलिए लेख हिन्दी में लिखे होने चाहिए।

हमारा आग्रह है कि अपने लेख का अब्स्ट्रेक्ट मेल से seminarhindi.education@gmail.com पर भेज दें। अब्स्ट्रेक्ट भेजने की अंतिम तारीख 15 जनवरी से बढ़ाकर 23 जनवरी कर दी गई है। छोटे लेख का सार 400 से 600 शब्दों का हो सकता और बड़े लेख का सार 800 से 1000 शब्दों का।

लेख की स्वीकृति की सूचना 10 फरवरी, 2017 तक दे दी जाएगी। अंतिम रूप से तैयार लेख 5 अप्रैल, 2017 तक भेजे जा सकेंगे।

किसी भी अन्य जानकारी के लिए कृपया उपरोक्त ईमेल पर संपर्क करें।